IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

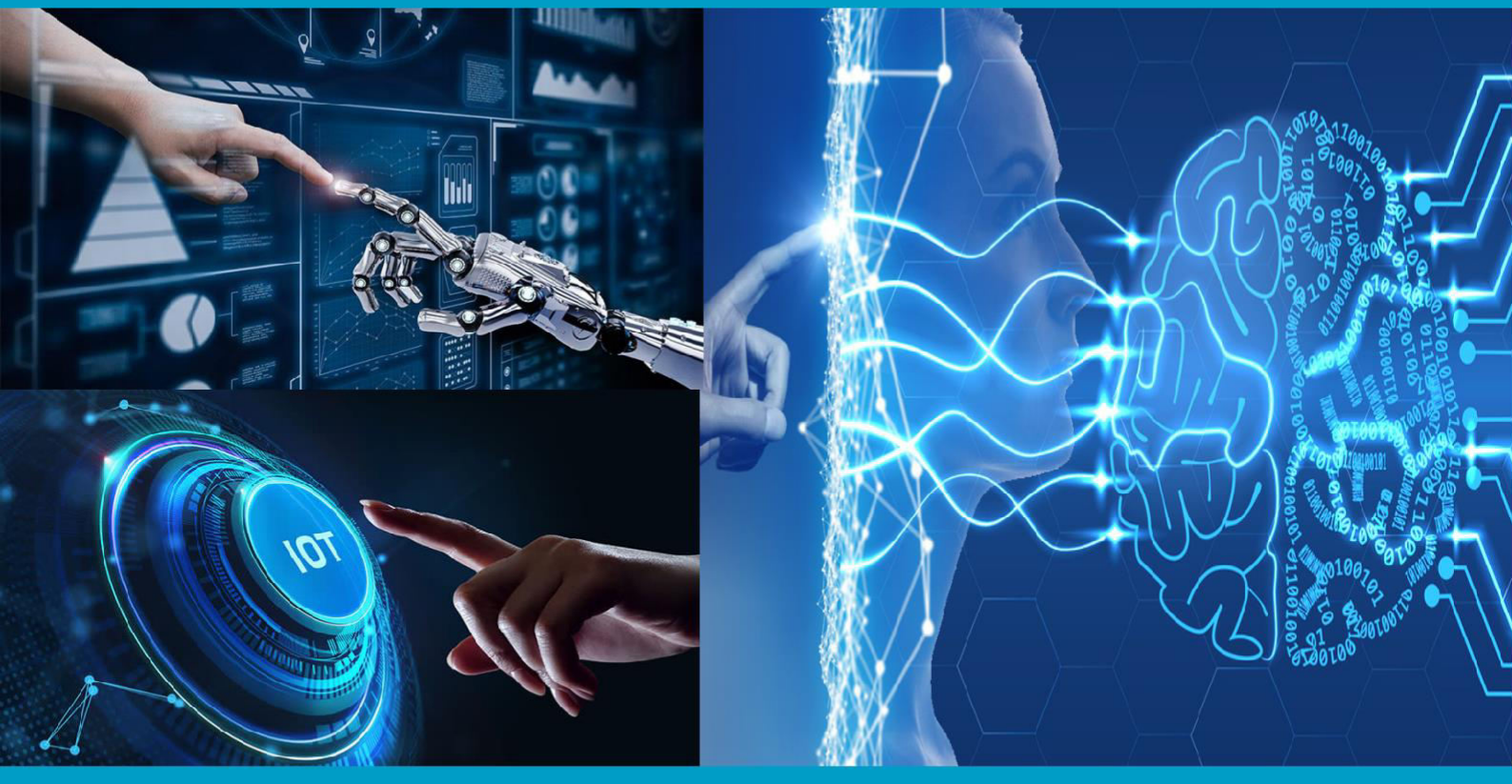

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 9, Issue 2, February 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.580

+91 99405 72462 +9163819 07438 ijmrsetm@gmail.com www.ijmrsetm.com

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

भारतीय समाज में कबीर की प्रासंगिकता

Savita Tak

Assistant Professor, Hindi, M.L.V. Government College, Bhilwara, Rajasthan, India

सार

कबीर युग दृष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। कबीर ने अपने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की चिरंतर समस्याओं को भी पहचाना।कबीर का समाज जात-पांत, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, मिथ्याडंबरों, रुढ़ियों, अंधविश्वासों, हिन्दू-मुस्लिम वैमनष्य, शोषण-उत्पीड़न आदि से त्रस्त तथा पथभ्रष्ट था। समाज के इस पतन में धर्म, धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। कबीर ने समय की नस को पहचाना। समाज के मार्गदर्शन हेतु एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की। तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से मिला। उन्होंने जिन सामाजिक, सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी यथावत हैं। कबीरदास का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग-विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत प्रासंगिक है।

परिचय

हर युग का साहित्य अपने युग का आईना होता है। उसमें युगीन चेतनाएँ, विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ अपने यथार्थ रूप में सन्निहित होती हैं। एक जागरूक रचनाकार केवल अपने समय को नहीं जीता बल्कि अपने अतीत और भविष्य में भी रचता-बसता है। वह समाज से मूल्य ग्रहण कर उन्हें संवर्द्धित, परिष्कृत कर समाज के लिए उपयोगी, सार्थक तथा स्वस्थ मूल्यों का निर्धारण करता है। ऐसा साहित्य अपने युग का इतिहास होने के साथ-साथ युगांतकारी तथा कालजयी होता है। वर्तमान समय में हमारे चारों ओर बढ़ती जटिलताओं, विडंबनाओं एवं विसंगतियों के कारण बार-बार पूर्ववर्ती साहित्य एवं विचारों की प्रासंगिकता की मांग बड़ी है। ऐसा पूर्ववर्ती साहित्य जो हमारी सत वृत्तियों का मंडन कर असत वृत्तियों का खंडन करने के साथ-साथ मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर समाज को भविष्योन्मुख बनाने को प्रतिबद्ध हो,सदैव प्रासंगिक रहता है। रमेशचन्द्र शाह रचना की प्रासंगिकता पर लिखते हैं- "रचना की प्रासंगिकता का निकष इकहरा नहीं हो सकता, क्योंकि वह रचना की प्रासंगिकता का निकष है, जिसकी रचनात्मकता काव्य, संस्कृति के मूल्यों पर भी प्रासंगिक हो। उसके साथ-ही-साथ रचना वह प्रासंगिक है जो अपने समय की मानव सच्चाईयों का उनकी पूरी जटिलता में साक्षात्कार कराती हो। यह दोहरी प्रासंगिकता रचना की राह में हर अवरोध को, हर रचना-द्रोही परिस्थितियों को तोड़ने वाली होगी और मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाली होगी। जाहिर है कि यह तभी हो सकता है, जब रचना मात्र समसामयिक ही न हो बल्कि मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता को कुंठित करने वाले हर खतरे को सूंघ लेने वाली हो। अतीत की होकर भी वर्तमान को भी पहचानने वाली हो।"[1]

मध्ययुग में कबीर और संतों की वाणी ने जो अलख जगाया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जितना तत्कालीन युग में था। कबीर अपने युग की उपज हैं। युगीन परिस्थितियों एवं समय की मांग ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा। वे सारग्राही महात्मा थे। जिन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी मत-मतांतरों के सार को ग्रहण किया। उन्हें अपने तर्क और अनुभव की कसौटी पर कसा, जो विश्वास, मान्यताएँ, मानवता, नैतिकता एवं भक्ति की राह में व्यर्थ बाधक थे उनका विरोध किया। कबीर सच्चे भक्त होने के साथ-साथ एक प्रखर, तेजस्वी, स्पष्ट वक्ता, साहसी, निर्भीक, निरभिमानी, विनय, सहृदय, परदुःखकातर आदि गुणों के धनी थे। सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों-आडंबरों, दुराचार, पाखंडादि का जैसा तीव्र विरोध उनमें देखा जाता है, वह अद्वितीय है। मध्ययुग मुगलों के

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

आक्रमणों, धर्मांतरण, देशी राजाओं की विलासिता, धार्मिक पाखण्डादि से उपजे असुरता, भय, कुंठा, सांप्रदायिकता, रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का युग था। हताश-निराश जनता मंत्र, योग, जात-पांत, छुआछूत, सामंतशाही, दमन-शोषण से त्रस्त थी। समाज नैतिक पतन के गहरे गर्त में गिर रहा था। ऐसे में संत कवियों ने समय की नस को पकड़ा। उन्होंने जो कहा अपने अनुभव से कहा। जो देखा, भोगा और सहा उसी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कबीर की वाणी है।

कबीर से लेकर अन्य सभी संत समाज के अति सामान्य समझे जाने वाले पेशे से संबंध रखते थे। ये मोची, बुनकर, दर्जी, धोबी, लोहार आदि थे। समाज अनेक जातियों-उपजातियों, विभिन्न वर्गों में विभाजित था। फलस्वरूप जातिप्रथा तथा भेदभाव ने समाज को खोखला कर दिया था। मानवता कराह रही थी। कबीर मानव मात्र के समानता के पक्षधर थे। उनके अनुसार ऊँचे कुल में जन्म लेने से या ब्राह्मण होने मात्र से कोई ऊँचा या श्रेष्ठ नहीं हो जाता। मनुष्य अपने आचरण एवं सुंदर कर्मों से ऊँचा बनता है। सोने के कलश में मदिरा भरा हो तो निंदनीय हो जाता हैं-

"ऊँचे कुल का जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।
सोबन कलस सुरै भरया, साधू निंदत सोइ॥"[2]

कबीर का युग सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से अनास्था, विघटन और वर्जनाओं का युग था। इनके पोषण में धर्म की अहम भूमिका थी। सामाजिक, राजनैतिक सभी निर्णयों के आधार धर्मशास्त्र होते थे। कहने को यह धर्म था परन्तु मानवीय धरातल पर अधर्म से कम नहीं। जो धर्म समाज, आस्था, राजनीति सभी के मूल में था, वही समाज के एक वर्ग के शोषण, उत्पीड़न एवं अन्याय के लिए जिम्मेदार भी था। जिन्हें पूजा-पाठ, पठन-पाठन तथा समता का कोई अधिकार प्राप्त न था। वे अछूत, निम्न थे सभ्य कहे जाने वाले समाज के लिए। अतः कबीर ने ईश्वर भक्ति सबके लिए सुलभ बनाई निर्गुणोपासना के द्वारा। निर्गुण भक्ति ने समाज के निम्न वर्गों के लिए भक्ति और धर्म का द्वार खोल दिया। इसमें मंदिर, मस्जिद, मूर्ति, छापा-तिलक, पंडित, मंत्रादि किसी कर्मकांड की कोई जगह न थी। कबीर ने समाज को अहसास दिलाया कि भक्ति और भगवान किसी की पैतृक संपत्ति नहीं है। उस पर सभी का अधिकार है। भक्ति के लिए किसी विशेष क्षण, तिथि, वेशभूषा, कर्मकांड, स्थान की आवश्यकता नहीं होती। कहीं भी, किसी भी वक्त सोते-जागते, खाते-पीते, घर बैठे, काम करते भक्ति की जा सकती है। बशर्ते उसमें सच्चाई, सरलता और प्रेम निहित हो। कबीर के अनुसार भक्त और भगवान का प्रेम स्वार्थहीन होता है। सच्चे प्रेम से भगवान को पाया जा सकता है। कबीर भक्ति में प्रेम को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि प्रेम के अभाव में भक्ति निरर्थक और दंभमात्र है।

पाखंडी ही ईश्वर को पाने के लिए पूजा-व्रत, तीर्थ, मक्का-मदीना, मंदिर तीर्थादि में भटकते फिरते हैं। फिर भी उन्हें ईश्वर नहीं मिलते। हिन्दू चौबीस एकादशी के व्रत और मुसलमान रमजान का एक महीना रोजा रखते हैं। उनसे कबीर पूछते हैं साल के दूसरे दिन ईश्वर कहा जाते हैं? हिन्दू पूर्वाभिमुख करते हैं और मुसलमान पश्चिमाभिमुख होकर नमाज पड़ते हैं। कैसे राम का देश पूर्व और रहीम का पश्चिम हो सकता है? राम और रहीम तो एक ही हैं। राम-रहीम की एकता का प्रतिपादन कर सारे देश को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य और भेदभाव की चौड़ी खाई को पाटने का कुशल प्रयास किया। मध्यकालीन समाज में मुगलों के आधिपत्य और अत्याचारों के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमान विद्वेष ने आग पकड़ी होगी। परन्तु यह समस्या तो आज लगभग पाँच सौ साल बाद भी ज्यों की त्यों है। देश सांप्रदायिक दंगों के घाव आए दिन झेल रहा है। दोनों धर्मों के नाम पर आपस में घात-प्रतिघात हेतु तत्पर रहते हैं। धर्म का वह स्वरूप लुप्त सा हो गया है जो हिन्दू और मुसलमान संप्रदाय में प्रेम, सौहार्द, भाईचारा एवं मानवता को बढ़ावा दें। ऐसे में कबीर पुनः प्रेरणा बनकर उभरते हैं -

"दुइ जगदीश कहाँ ते आए,कहु कौन भरमाया।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

अल्लाराम करिम केशव हरि, हजरत नाम धराया॥"[3]

कबीर ने पवित्रता और श्रेष्ठता का ढोंग करने वाले मुल्ला-मौलवियों तथा हिंदुओं की पोल खोल कर रख दी है। हिन्दू स्वयं को श्रेष्ठ, ऊंच कुल का मानकर अछूतों के हाथों का पानी भी नहीं पीते। परंतु दूसरी ओर वेश्याओं के चरणों में पड़े रहते हैं। यही हिन्दुत्व है? दूसरी और मुसलमान भी अपने ही घर में सगाई करते हैं। मांसाहार करते हैं और पवित्रता का ढोंग करते हैं। यही इस्लाम है? दोनों ही धर्म के अनुयायी चारित्रिक दृष्टि से भ्रष्ट हैं। उनकी कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर हैं। उनकी दृष्टि में जो सच्चा भक्त होता है वह सभी प्रकार की संकीर्णताओं, ऊँच-नींच, भेदभाव तथा अहं से ऊपर उठकर मानवता का संदेश देता है।

कबीर ने निर्गुण भक्ति के द्वारा धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक मुक्ति के प्रश्नों को उठाया। उसके मूल में मानवमात्र की समता, स्वतन्त्रता एवं भातृत्व की भावना प्रमुख थी। इसने समाज के उपेक्षित और प्रताड़ित वर्ग में आत्मसम्मान की भावना जगाई। जिसने वैचारिक संघर्ष को जन्म दिया। अतः कबीर की निर्गुण भक्ति और उसका उद्देश्य मध्ययुग में जितना प्रासंगिक था, आज भी उतना ही प्रासंगिक बना हुआ है। स्वतंत्र भारत में वैधानिक रूप से सभी को समता, स्वतन्त्रता एवं समाधिकार प्राप्त हैं। बावजूद इसके समाज का एक विशाल वर्ग भेदभाव, छुआछूत, अशिक्षा, गरीबी से ऊबरा नहीं है। उनके लिए समता और स्वतंत्रता के मायने क्या होंगें? इस पर रवीद्र कुमार सिंह लिखते हैं- "संविधान में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के अधिकारों की गारंटी के बावजूद व्यवहारिक दृष्टि से असमानता, पराधीनता और पारस्परिक विरोध को ही बढ़ावा मिल रहा है। ऐसी स्थिति में संत कवियों की वैचारिक संघर्ष चेतना, उनकी जनतान्त्रिक अवधारणा, समानता और भाई-चारे के आदर्श आदि हमारे लिए संघर्ष का एक नया मार्ग प्रस्तुत करते हैं। यह संघर्ष विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक संगठनों के साथ ही साहित्य और कला के मोर्चे पर भी तेज़ हुआ है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आज की परिस्थितियों में संत-काव्य की प्रासंगिकता अधिक बढ़ रही है।"[4]

कबीर ने मध्ययुग में एक ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो वर्तमान में वर्ग-विहीन समाज की ओर अग्रसर होने के लिए नितांत प्रासंगिक है। उन्होनें जिन विसंगतियों, वर्जनाओं, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया वे आज भी यथावत हैं। कबीर युगीन समाज को रूढ़ियों, विकृतियों एवं अंधविश्वास ने खोखला कर दिया था। धर्म एवं भक्ति में बाह्याडंबरों की बहुलता थी। समाज की ऐसी दशा से वे विचलित हो उठे थे। कबीर के अनुसार आडंबर ही समाज में लड़ाई-झगड़े, संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण बनते हैं। आडंबरों से समाज में कभी स्थायी सुख, शांति एवं भाईचारे की बहाली नहीं हो सकती।[10] समाज को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्होंने धर्म एवं भक्ति के बाह्याचारों का कड़ा विरोध कर सात्विक भक्ति पर जोर दिया। आज भी स्थिति बदली नहीं है। धर्म और भक्ति का रूप और विकृत होता जा रहा है। इनमें व्याप्त दिखावा, बाह्याचारों की प्रदर्शनी, बड़प्पन की मानसिकता ने समाज में संकीर्णता, असहिष्णुता, एवं धार्मिक अराजकता को बढ़ावा दिया है। हमारे तीर्थ स्थानों पर भक्ति नहीं लूट मची है। अतः कबीर आज भी प्रासंगिक हैं-

"मोको कहां ढूंढत बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौनो क्रिया करम में, नहीं जोग बैराग में॥"[5]

कबीर ने देखा कि तत्कालीन समाज में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अपने रास्ते से भटक गए थे।[9] उनमें, बाह्याचारों की प्रधानता थी। सत्य, अहिंसा, त्याग, संतोषादि मूल्य विकृत हो चुके थे। उनमें अपने धर्मों को लेकर मिथ्या दंभ एवं श्रेष्ठता बोध हावी होती जा रही थी। ऐसी मानसिकता को बढ़ावा देने वाले मुल्ला-मौलवी और पंडितादि थे। अतः कबीर ने इनकी तीखी आलोचना की। ईश्वर घट-घट व्यापी हैं। उसे पाने के लिए किसी दिखावे की आवश्यकता नहीं। कबीर कहते हैं कि मुसलमान दिन भर रोजा रखते हैं और रात को गाय मारते हैं। कहाँ भक्ति और कहाँ हत्या? ऐसे परस्पर विरोधी कर्मों से ईश्वर कैसे खुश होंगे -

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

"दिन में रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
कहं हत्या कहं बंदगी, कैसे खुशी खुदाय॥"[6]

कबीर ने हिन्दू समाज में व्याप्त भेष, तिलक, माला, योगाचार, व्रत, उपवास, श्राद्ध, तीर्थयात्रा तथा अन्य अनेक अंधविश्वासों की तीव्र आलोचना की। उनकी आलोचना और विरोध युक्ति संगत एवं तर्कयुक्त हैं। कबीर ने भगवाधारी ठगों से भी समाज को सावधान किया है। उनके अनुसार केवल संतों जैसे वस्त्र धारण करने या दिखने से कोई संत नहीं होता। प्रवृत्ति एवं व्यवहार में संत होना आवश्यक है। वर्तमान समाज में भी ऐसे भगवाधारियों की कमी नहीं है। कहने को तो संत हैं लेकिन आये दिन भोग-विलास, झूठ-फरेब, सूरा-सुंदरी जैसे चारित्रिक, नैतिक पतन के गहरे गर्त में डूबे हुए हैं। आश्चर्य तो तब अधिक होता है जब इन ढोंगियों के पीछे हमारा शिक्षित-बुद्धिजीवी वर्ग हाथ जोड़े घूमता है। अतः आज फिर से कबीर को आत्मसात करने की महती आवश्यकता है –

"साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं॥"[7]

कबीर समाज में प्रचलित अंधविश्वासों को उखाड़ फेंकना चाहते थे। हिंदुओं में यह विश्वास प्रचलित था कि काशी में मृत्यु होने पर स्वर्ग और मगहर में होने पर नरक की प्राप्ति होती है। इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए उन्होंने स्वयं मगहर में महानिर्वाण लिया। उनका मानना है कि व्यक्ति अगर जीवन भर भक्ति नहीं करता। अच्छे कर्म नहीं करता तो केवल काशी में हुई मृत्यु से उसे स्वर्ग लाभ नहीं हो सकता। कबीर निष्ठाहीन व्यक्ति न थे। प्रेम, विनय, श्रद्धा, अहिंसा, सच्चाई, करुणा, दया, ममता जैसे मानवीय मूल्यों के प्रति उनमें अपार विश्वास है। किन्तु उनकी श्रद्धा और निष्ठा तर्क पर आधारित है। तर्कहीन अंधविश्वास तथा रूढ़ियों के वे विरोधी रहे हैं। [8]

इसी तरह कबीर श्राद्ध जैसे लोकाचारों का भी विरोध करते हैं। जब तक अपने माता-पिता या परिवार के बिजुर्ग जीवित हैं। उनकी सेवा-देखभाल करनी चाहिए। उन्हें पूरा सम्मान और प्रेम देना चाहिए। मगर अक्सर देखा जाता है कि परिवार में बुजुर्ग उपेक्षित होते हैं। ऐसी अवस्था में उनके मृत्योपरांत किया जाने वाला श्राद्ध व्यर्थ है। पितरों के नाम पर होने वाले श्राद्ध में पितर आकर क्या खाते हैं? वह अन्नादि तो कौवें और कुत्ते खाते हैं –

"जीवत पितर न मानै कोऊ, मुए सराद्ध कराही।
पितर भी बपुरे कहु क्यों पावहिं, कौवा कुकुर खाहीं॥"[8]

कबीर के ये विचार आज और प्रासंगिक हो गए हैं। आज के भागदौड़ के जीवन में व्यक्ति मशीन की तरह संवेदनहीन बनता जा रहा है। सब कुछ अकेले भोग करने की लालसा ने एकल परिवारों को बढ़ावा दिया है। माँ-बाप, सास-ससुर बोझ बनने लगें। अतः बिडम्बना है कि जिस गति से मनुष्य प्रगति के सोपानों को छू रहा है। वृद्धाश्रमों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही हैं। जीवित रहते वक्त कोई नहीं पूछता सगे-संबंधियों को। घर में विद्यमान साक्षात पितरों को भर पेट अन्न और प्रेम के दो बोल नसीब नहीं होते। मृत्योपरांत उनके नाम पर पिंड भर-भर दक्षिणा किये जाते हैं। जिनका कोई अंश पूर्वजों तक नहीं पहुंचता। कौवे-कुत्ते खा जाते हैं। [7]

कबीर को मृत्यु से डर न था। वे इस रहस्य को समझ चुके थे कि मृत्यु अनिवार्य है। इस ज्ञान ने उन्हें निर्भय बना दिया था। यही कारण था कि उन्होंने सदैव अधर्म, अन्याय और असंगतियों का विरोध किया। मुल्ला, मौलवियों, पंडितों और जोगियों से भी उलझ पड़ते थे। मृत्यु के भय से कभी सत्य का दामन नहीं छोड़ा –

"जा मरने से जग डरे मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहों पूरन परमानंद॥"[9]

कबीर के ये विचार आज भी प्रासंगिक हैं। जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु निश्चित है। अतः मनुष्य को

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

चाहिए कि सत्य का साथ दे। मृत्यु करीब है यह जानकर सभी से प्रेम तथा सदभाव रखें। तेरा-मेरा की दौड़ में जीवन को नष्ट क्यों करें? मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता को भूलकर अपने सुखों को चिरस्थायी बनाने हेतु रात-दिन मारा-मारी करता फिर रहा है। अपने लब्ध सुखों के आनंद को भी व्यर्थ कर दिया है। कबीर की दृष्टि में संसार व्यर्थ नहीं है बल्कि मनुष्य ने अपनी अज्ञानता के कारण इसे दुखदायी बना दिया है। लोभ-लालच के कारण यहाँ छिना-झपटी, लूट-मार मची हुई है। फलस्वरूप ढोंग, छल-कपट, चमत्कार प्रदर्शन की होड़ लगी हुई है। [6]

आज हम कोरोना महामारी की विकट परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। जहाँ जीवन-मरण के संग्राम में मानवता चित्कार उठी है। दवाइयों, ऑक्सीजन, स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में सांसे टूट रही हैं। ऐसे में भी समाज का एक वर्ग ऑक्सीजन, दवाई आदि की कालाबाजारी कर रहा है। हमारी मानवता और मानवीय संवेदनाओं पर भौतिकवादी सोच हावी हो गई है। अपने स्वार्थ के लिए मनुष्य बड़े से बड़ा अमानवीय कृत्य करने को भी तत्पर दिखता है। ऐसे में कबीर फिर से पढ़े और समझे जाने चाहिए। जीवन की सार्थकता एवं व्यर्थता के उनके विचारों को पुनः आत्मसात करने की आवश्यकता आ पड़ी है। [5]

मनुष्य जिस धन-संपत्ति को प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ बर्बाद कर देता है। कबीर के अनुसार उस धन का जीवन में कोई लाभ नहीं मिलता। क्योंकि वह नैतिक-अनैतिक तरीके से कमाया हुआ होता है। धन के आधिक्य से भोग-विलास बढ़ता है और जीवन में पतनशील मूल्यों की वृद्धि होती है। भौतिक समृद्धि से कोई बड़ा या महान नहीं हो सकता। खजूर का पेड़ कितना भी ऊँचा क्यों न हो जाएँ, वह सामान्य लोगों को फल और छाया प्रदान नहीं कर सकता। अतः कबीर धन का मूल्य सामाजिक उपयोगिता से आंकते हैं। जरूरतमंदों के प्रति स्नेहपूर्वक उनकी जरूरतों को पूरा करने वाला व्यक्ति ही बड़ा होता है। कबीर यह भी कहते हैं कि धन अधिक होने पर पारिवारिक आत्मीयता, शांति तथा स्नेह नष्ट हो जाती है। सज्जन वही होता है जो अपने दोनों हाथों से गरीबों पर धन खर्च करें, क्योंकि वे अपने लिये धन एकत्र नहीं करतें -

"वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखे नदी न संचय नीर।
परमार्थ के कारने साधुन धरा सरीर॥" [10]

कबीर आर्थिक स्वार्थ को त्यागकर संयमित होने की शिक्षा देते हैं। मनुष्य अपनी जरूरत के अनुसार ही धन संचय करें। तभी समाज में समता, नैतिकता एवं मानवता की बहाली हो सकेगी। आर्थिक स्वार्थ से नैतिकता का ह्रास होता है। [4]

पुस्तकीय ज्ञान के महत्व पर भी कबीर के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं। आज शिक्षा के कई आयाम हैं। तकनीकी विकास के साथ समृद्ध शिक्षा प्रणाली का दंभ भर रहें हैं। बड़े से बड़े प्रमाणपत्र प्राप्त कर बुद्धिजीवियों की पंक्ति में खड़े हैं। सवाल यह है कि हम कैसी शिक्षा का दंभ भर रहे हैं? जो नैतिक एवं मानवीय शिक्षा से परे केवल मानव रूपी मशीन तैयार कर रहा है। स्वार्थ, संवेदनहीनता से लबरेज मनुष्य जीवन के सत्य से भटक रहा है। कबीर स्वयं पढ़े-लिखें नहीं थे। अनपढ़ और नीच जाति से होने के कारण काशी के पंडितों से उलाहना पाते रहें। कबीरकालीन समाज तथा आज भी लोगों में अंधविश्वास व्याप्त है कि पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही पंडित, विद्वान होता है। कबीर इस धारणा को तोड़ते हुए कहते हैं कि सच्चा पंडित पुस्तकीय ज्ञान से नहीं बनता, बल्कि प्रेम में डूबकर बनता है। वे पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीवन के अनुभव तथा सच्चे प्रेम को महत्व देते हैं -

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ॥" [11]

कह सकते हैं कि कबीरकालीन विकृतियों, असंगतियों, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से आज भी हमारा समाज मुक्त

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

नहीं हो पाया है। जात–पांत, छुआछूत, सांप्रदायिकता, अशिक्षा, गरीबी जैसी विषमताएँ जड़ जमाये बैठी हैं। आर्थिक स्वार्थ, दंभ, नैतिक पतन ने व्यक्ति को संवेदनहीन और स्वार्थी बना दिया है। शोषण, उत्पीड़न, झूठ, फरेब आज और भयानक रूप में देखा जा सकता है। अतः कबीर के समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व गढ़ने के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु वे जीवनभर संघर्षरत रहें, उस संघर्ष की लौ को फिर से जीवित रखने की आवश्यकता आ पड़ी है। प्रेम, मानवता, सद्भाव, सौहार्द और नैतिकता की बहाली के लिए कबीर के विचारों का पुनः अनुसरण समय की मांग है। "वे हर जेल के खिलाफ 'आजादी' हैं, हर सत्ता के खिलाफ सृजनधर्मी विपक्ष हैं। कठमुल्लापन और पुरोहितवाद, कट्टरपंथ के खिलाफ अब कबीर के विपक्ष की जरूरत है।"[12]

विचार-विमर्श

कबीर पंद्रहवीं शताब्दी के संत थे, भक्तिकाल के कवियों मे वह प्रमुख रहस्यवादी कवि थे, उनके दोहे सुनने वाले लिख लेते थे या कंठस्त कर लेते थे क्योंकि कबीर अनपढ़ थे, पर ज्ञान का भंडार थे। उन्होने ख़ुद कहा कि ''मसि कागज़ गह्यो नहीं, कलम नहीं छुओ हाथ।''[3]

सिख धर्म पर उनका प्रभाव स्पष्ट झलकता है।उनका पालन पोषण एक मुस्लिम जुलाहा परिवार मे हुआ था पर उन्होने अपना गुरू रामानंद को माना। जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं,जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है "काशी में ***परगट भये, रामानंद चेताये***"

हिन्दू कहें मोहि राम पियारा, तुर्क कहें रहमाना,
आपस में दोउ लड़ी-लड़ी मुए, मरम न कोउ जाना।

आज जब पूरे विश्वमे धर्म के नाम पर आतंकवाद फैला हुआ है तब कबीर के दोहों को याद करना उन्हे जीवन मे उतारना बहुत प्रासंगिक लगता है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाँडों के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्त्ति, रोज़ा, ईद, मसजिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानतेथे।कबीर के समय मे हिंदू जनता पर धर्मांतरण का दबाव था उन्होने अपने दोहों मे दोनो धर्मो के कर्मकाँडों का विरोध किया और ईश्वर केवल एक है इस बात को तरह तरह से लोगों को सहज भाषा मे समझाया।उन्होने ज्ञान से ज़्यादा महत्व प्रेम को दिया।–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

निम्नलिखित दोनो दो हों मे कबीर ने हिन्दू और इस्लाम दोनो धर्मोंके खोखलेपन को बताया है।मूर्ति पूजा को निरर्थक मानते हुए वो कहते हैं कि इससे अच्छी तो चक्की है, कि कुछ काम तो आती है।मुल्ला के बांग लगाने का भी वह उपहास करते हैं।ये दोहे आज इसिलिये बहुत प्रांसंगिक हो गये हैं क्योंकि आज धर्मों मे दिखावा बढ़ता जा रहा है,एक दूसरे कोनीचा दिखाने की होड सी लगी हई है।[2]

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
वाते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार।
कांकर पाथर जोड़िके मस्जिद ली बनाय
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ ख़ुदाय

कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसकथे।वो पराये दोष देखने से पहले अपने दोष देखने की बात कहते थे।-

दोस पराए देखि करि, चला हसन्त हसन्त,
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अंत।

ये दोहा आज के संदर्भ मे बहुत प्रसंगिक है।राजनैतिक दलों पर ये बहुतसटीक बैठता है, जब कोई नेता विरोधी दल की किसी बुराई की ओर इंगित करता है सामनेवालाआरोप का उत्तर न देकर आरोप लगाने वाले कटघरे मे खड़ा कर देता है।स्वस्थ आलोचना कोई स्वीकार नहीं करता, जबकि स्वस्थ आलोचना का बहुत लाभ है।–

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय,
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।
इसी तरह आरोप प्रत्यारोप लगते रहते हैं और लोग अमर्यादित भाषा बोलने लगते हैं किसी भी सभ्य समाज मे अमर्यादत भाषा और अभद्र शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिये किसी भी वजहसे वाणी मे कटुता नहीं आनी चाहिये। आज हर तरफ़ नफ़रत का महौल है, क्रोध है, जिस वजह से व्यक्ति अपना संतुलन खोता जा रहा है और किसी के लिये भी कड़वे व अभद्र बोल बोल देता है।हरेक से मृदु वाणी बोलने से व्यक्ति ख़ुद भी शाँत रहता है और सुनने वाले भी शाँत हो जाते हैं।–

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय,
औरन को सीतल करे आपहुं सीतल होय।
व्यर्थ की बातों मे बहस मे क्रियाकलापों मे आज हरेक इतना समय बरबाद कर देताहै। साधु यानि अच्छे लोगों को मुख्य बातों पर ही ध्यान देना चाहिये इस बात को सूप के माध्यम से कबीर ने बहुत सुन्दर तरीके से सझाया था।–

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय,
सार-सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय।
आज संचार के युग मे यह दोहा बहुत प्रासंगिक है।–
बोली एक अनमोल है, जो कोई बोलै जानि,
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आनि।

आजकल राजनैतिक दलों के नेता हों या अभिनेता बिना सोचे समझे बयानबाज़ी कर देते हैं संचार के युग मे बात कहीं से कहीं तुरन्त पंहुच जाती फिर वो सफ़ाई देते रहते हैं कि उनका ये मतलब नहीं था, वो मतलब नहीं था, बात को संदर्भ सेअलग करके तोड़ मोड़ के पेश किया गया।उनके वकतव्य का मक़सद किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाना नहीं था।इसलिये कबीर ने कहा था कि बहुत सोच समझ कर मुंह से बात निकालनी चहिये।[1]

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान,
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।
कबीर जाति प्रथा को नहीं स्वीकार करते थे,उपर्युक्त दोहे मे उन्होंने स्पष्ट किया है कि साधु यानि गुणी लोगोंकी जाति नहीं पूछनी चाहिये उनके केवल गुण देखने चाहिये।आज जातिवाद का जो ज़हर समाज मे फैला है, कभी किसी जाति को आरक्षण चाहिये कभी किसी को,उनको कबीर का ये दोहा करारा जवाब है।
जीवन मे संतुलन का महत्व समझाते हुए कबीर कहते हैं अधिकता किसी भी चीज़ की सही नहीं है।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप,
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।
किसी का ओहदे या आकर मे छोटा बड़ा होना महत्वपूण नहीं है,महत्वपूर्ण उसकी उपयोगिता है। निम्नलखित दोनो दोहे यही प्रमाणित करते हैं।–

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं फल लगे अति दूर।
तिनका कबहुँ ना निन्दिये, जो पाँवन तर होय,
कबहुँ उड़ी आँखिन पड़े, तो पीर घनेरी होय।
आजकल धन दौलत ऐशो आराम के साधनो की दौड़ मे व्यक्ति सही ग़लत का अंतर भूल चुका है इसलिये भ्रष्टाचार, चोरी डकैती तथा दूसरे अपराध बढ़ रहे हैं। कबीर धन का महत्व मानते हैं पर बस इतना सा-

साईं इतना दीजिये, जा में कुटुम समाय,
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधू ना भूखा जाय।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

लालच काअंत ऐसा भी होता है-
मक्खी गुड में गडी रहे, पंख रहे लिपटाये,
हाथ मले और सिर ढूंढे, लालच बुरी बलाये।
संतोष का अर्थ समझाने के लिये वो लिखते हैं-
चाह मिटी, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

महत्वाकाँक्षी होना ग़लत नहीं है पर उसके लियेएक अंधी दौड़ मे लगकर अपना सुख चैन गंवाना सही नहीं है क्यों कि सब काम अपने समय से ही होते हैं। आज का व्यक्ति सब कुछ बहुत जल्दी पाना चाहता है पर सब काम अपने समय पर ही होते हैं-

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय,
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।

आजकल कुछ सनातनियों ने शिरडी के साँई बाबा पर विवाद शुरू कर दिया है।कबीर की तरह ही शिरडी के साँई बाबा के जन्मदेने वाले माता पिता के बारे मे कोई सही जानकारी नहीं है।कबीर की तरह ही साँईबाबा के चाहने वाले हिन्दूऔर मुसलमान दोनो धर्मो से थे। साँई कभी अल्लाह साँईं का उच्चारण भी करते थे।दोनो ने हमेशा एक ही ईश्वर को माना इन दोनो के राम दशरथ पुत्र राम नहीं बल्कि निराकार परमात्मा थे।इनके हरि और राम एक ही थे।[2]

कालांतर मे कबीर के ज्ञान को समझने और अपनाने वाले लोग कबीर पंथी कहलाने लगे पर उनके मंदिर नहीं बने,पर शिरडी के साँई बाबा का मंदिर शिरडी मे बना, पूरे हिन्दू रीति रिवाजों से यहाँ उनकी पूजा होने लगी, संभवतः इसलिये मुसलमानों का मोह साँई बाबा से नहीं रहा।धीरे धीरे मंदिर बहुत भव्य होगया और देश विदेश मे बाबा के भक्तों और मंदिरों की संख्या बढ़ने लगी।चढ़ावा भी बहुत आने लगा। कुछ साल से सांई बाबा के विरोध मे शँकाचार्य के नेतृत्व मे साँई विरोध मे एक बड़ा तबक़ा खड़ा हो गया उनका मानना है कि साँई हमारे देवी देवाओं के समक्ष नहीं रह सकते क्योंकि वो मुसलिम फ़कीर थे।मुस्लिम तो कबीर भी थे, यदि साँई बाबा की पूजा अर्चना हिंदू न करते तो वो भी संत फ़कीर ही थे।

यहाँ साँई बाबा का विरोध उनके जीवन काल के सौ साल बाद शुरू हुआ जबकि कबीर का विरोध उनके जीवनकाल मे हिंदू मुस्लिम दोनो ने किया था, पर मृत्यु के बाद दोनो कौमे उनको अपनाने के लिये आतुर थी।यहाँ साँई बाबा का जिक्र करन का मक़सद केवल कबीर की प्रासंगिकता बताना है, दोनो के प्रेम के संदेश की व्यापकता पर विचार करना है।[3] कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी। कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए ;क्योंकि लोगों मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है।[4]

कबीर की हर बाते आज उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उनके समय मे थी।आजकल धार्मिक कर्मकाँडों को बहुत ही विकृत रूप समाज मे दिख रहा है। राजनैतिक लाभ के लिये धार्मिक भावानाओं उकसाया जाता है। ऐसे मे कबीर को पढ़ना समझना और जीवन मे उतारना साँप्रदायिक सद्भाव बनाये रखने मे मदद कर सकता है।

परिणाम

आज जब हम चहुँओर व्याप्त सामाजिक जडता तथा अराजकता की ओर उन्मुख होते हैं तब व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति का

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

शंखनाद करने के लिए युगपुरुष की आवश्यकता महसूस करते हैं। कबीर का कालजयी व्यक्तित्व इस समय हमारे लिए ज्योतिपुंज है। आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व 1397 ई. में काशी में जन्मे कबीर आजीवन अथक प्रयासों से समाज का मार्गदर्शन करते रहे। वे जुलाहा कर्म को अपनाकर ग्राहस्थ जीवन के साथ संत बनकर 'समाज सुधार' का कार्य भी करते रहे। [5]
कबीर लोकलाज बचाने के लिए त्यागे गये तथा नीमा और नीरु मुस्लिम जुलाहे द्वारा पालित पोषित पुत्र थे। आजीवन संघर्ष उपरान्त उन्होंने अपना देह त्याग मगहर में किया। जिसका संदेश उस अंधविश्वास को मिटाना था कि यहाँ मृत्यु होने पर व्यक्ति अगले जन्म में गधा बनता है। जो लोग जीवनभर कबीर के विरोधी थे उनकी मृत्युपरांत शव को लेकर हिन्दू-मुस्लिम आपस में उलझे। कबीर की उलटबाँसिया आगे चलकर हिन्दू संतों, पीरों, फकीरों, 'गुरुग्रंथसाहिब' आदि की जुबान बनी अर्थात् कबीर का सम्पूर्ण जीवन ही उनका संदेश है।
डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जातिवाद भारतीय समाज का सबसे बडा कोढ है। यहाँ समय के साथ सब चीजें नष्ट हो जाती हैं, लेकिन 'जाति' एक ऐसी चीज शब्द है जो कभी नहीं जाती। सोपानीकृत अवस्था में स्वर्ण, अवर्ण, अस्पृश्यता, ऊँच- नीच आदि से जर्जर भारतीय समाज के विरुद्ध कबीर ने मुखर आवाज उठाई तथा मानव मुक्ति की बात की। जन्म के आधार पर भेदभाव को वे अमान्य ठहराते हैं –

जो तू बामन बामनि जाया, आन बाट तैं काहे न आया ।

वे आम आदमी की आवाज थे। उन्होंने निम्नवर्गीय चेतना को शब्द दिये। कबीर ने जन्म/जाति या कुलगत उच्चता के बजाय कर्म तथा विचारों की उच्चता को प्रतिष्ठा दी। उन्होंने एक आदर्श समाज का सपना देखा एवं जो वर्णभेद जैसी मानव-मानव को अलग करने वाली परम्पराओं का खण्डन किया। आज जब जाति का बोलबाला है, तब कबीर द्वारा जातिवाद के विरुद्ध की गयी इस एकतरफा लडाई की याद आती है। वे आमजन की आवाज थे तथा अंधकारयुग के जन नेता थे। [6]

धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक भारत के लिए हमें आदर्श समाज की रूपरेखा कबीर के संदशों में मिलती है। हिन्दू समाज द्वारा बहिष्कृत तथा मुस्लिम समाज द्वारा तिरस्कृत कबीर ने ईश्वरीय एकता की बात कही। उन्होंने धर्म के नाम पर भेदभाव तथा ईश्वर के नाम पर लडाई का ताकिर्क खण्डन किया। कबीर के राम निर्गुण एवं निराकार ईश्वर थे। उन्होंने उसे सबका प्रभु बनाया तथा मानव धर्म की प्रतिष्ठा की। उन्होंने आस्तिकों के ईश्वर, ईश्वरीय ग्रंथ, उपासना स्थल तथा अनुयायियों के नाम पर विभेद को नकारा तथा धार्मिक समन्वय की अवधारणा प्रतिपादित की।आज के धार्मिक वैमनस्य के वातावरण में कबीर के विचार प्रासंगिक हैं कि 'हिन्दू उसे राम कहता है। मुसलमान खुदा कहता है। तू उसकी परवाह न कर तब काबा काशी हो जाएगा और राम रहीम हो जाएगा।' यही कारण है कि जब कबीर की मृत्यु हुई तब उनके शव पर दावा प्रत्येक धर्मानुयायी ने किया तथा मगहर में उसका स्मारक धार्मिक समन्वय की मिसाल है। [7]

कबीर अपने समय के क्रान्तिकारी प्रवक्ता थे। उन्होंने आडम्बरों, कुरीतियों, जडता, मूढता एवं अंधविश्वासों का तर्कपूर्ण खण्डन किया। [8] कबीर का अपने युग के प्रति यथार्थ बोध इतना था कि उन्होंने हर एक परम्परा, रूढ, कुरीति तथा पाखण्ड को यथार्थ के धरातल पर खारिज किया। अबुलफजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि ''कबीर ने समाज के सडे-गले रीति रिवाजों को नकार दिया। कबीर ने समाज सुधार के लिए कोडे खाए तो व्यंग्य तथा हँसी-ठिठौली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की।'' उन्होंने आलोचना के साथ सृजन की रूपरेखा रखी। कबीर अराजकता, सामन्तवाद तथा उथल-पुथल के दौर में क्रान्तिकारी स्वप्नकार हैं। वे स्वभाव से संत थे, लेकिन प्रकृति से उपदेशक। उन्होंने अंधविश्वासों का उपहास कर ठीक निशाने पर चोट पहुँचाई। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्र, अवतारवाद एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया तथा ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी भी मध्यस्थ को अस्वीकार किया। उन्होंने हर रूढ को खारिज किया जो मानव-मानव में भेद कराती थी। आज के दौर में जब भौतिक साधनों हेतु भ्रष्टाचार, लूट- खसौट, मिलावटखोरी जैसे अपराध मानवता को झकझोर रहे हैं तब कबीर के ये विचार अति प्रासंगिक हैं –

सांई इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु ना भूखा जाये ।।
अर्थात् कबीर संग्रहवाद के बजाय अपरिग्रह को महत्त्व देते हैं। रामानन्द के शिष्य कबीर ने धार्मिक आडम्बरों के विरुद्ध आवाज उठाई और कहा कि–
कांकर पत्थर जोरि के मस्जिद लई बनाय ।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

ता ऊपर मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय ।।

कबीर की उलटबाँसिया पग-पग पर मानव को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती हैं, वे हर उस व्यवस्था का विरोध करते हैं जो मानव को अवनति की जंजीरों में जकडती है तथा उसे रसातल में ले जाती है। [9]
कबीर ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की। उन्होंने धैर्य, सहिष्णुता, कर्मयोग, गुरु का सम्मान, प्रेम, मानवता, आत्मा की पवित्रता, दीन-दुखियों की सेवा, नैतिकता के पालन को मानवीय कर्त्तव्य माना। कबीर ने 'माली सींचे सौ घडा' के माध्यम से धैर्य के साथ कर्म को महत्त्व दिया। उन्होंने 'भृगु मारी लात' द्वारा क्षमा के महत्त्व तथा 'माटी कहे कुम्हार से' द्वारा सहिष्णुता का पाठ पढाया। कबीर सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे। उन्होंने समाज को सचेत किया कि निर्बल को मत सताओ नहीं तो उसकी हाय से सब कुछ नष्ट हो जायेगा –

निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय ।
मुई खाल की श्वांस सौं लौह भसम हो जाय ।।

उन्होंने पलायन न करके समाज के बीच में रहकर गृहस्थ के रूप में कर्मयोगी बनकर समाज को शिक्षित किया। उन्होंने जुलाहा कर्म को अपनाकर सभी के समक्ष आदर्श रखा कि कोई भी व्यवसाय हीन नहीं है अर्थात् कर्म की महानता के वे साक्षात् प्रतीक थे। उन्होंने जीवन में कथनी और करनी की समानता को महत्त्वपूर्ण माना। वे दुःखी मानव की पीडा को स्वयं भोग रहे थे –

चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोए ।
दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोए ।।
कबीर अनपढ थे, लेकिन वे लकीर के फकीर नहीं थे। वे यथार्थ जीवन के विद्वान् थे। वे कहते हैं –
मसिकागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ ।
चारिउ जुगन महातम् कबीर, मुखहि जनाई बात ।।
उन्होंने शिक्षा प्रणाली को पोथियों से बाहर लाकर प्रेम तथा यथार्थ पर आधारित किया –
पोथी पढ-पढ जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम का, पढै सौ पंडित होय ।।

उन्होंने कर्म तथा स्वावलम्बन की शिक्षा दी। कबीर वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा तर्कबुद्धि को सच्ची शिक्षा मानते थे। उनके यथार्थवाद पर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, ''कबीर ने कविता के लिए कविता नहीं लिखी, वह अपने आप हो गयी।'' कबीर ने जनभाषा में जनता को शिक्षित किया। उनकी सधुक्कडी भाषा एक ओर मातृभाषा में विद्यार्थी को शिक्षित करने के लिए प्रेरित करती है, वहीं दूसरी ओर भाषायी पाण्डित्य, परायी भाषा में अपने लोगों से बात करना तथा भाषा के नाम पर विवाद पैदा करना आदि प्रवृत्तियों पर प्रश्नचिह्न लगाती है। [10]

आज 21वीं सदी के विश्व में भारत जहाँ अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, वहाँ स्थानीय समस्याएँ, नक्सलवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद के दौर में एक 'समग्र भारतीय व्यक्तित्व' के रूप में कबीर हमारे व्योम में जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के लिए लिखा है, ''वे मुसलमान नहीं थे। हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वैष्णव होकर भी वे वैष्णव नहीं थे। योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान् के नरसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नरसिंह की भाँति वे असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिन्दु पर अवतरित हुए थे, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर भक्ति मार्ग।'' अकबर के दरबारी उर्फी ने उनके बारे में कहा है, ''ऐसे रहो अच्छे और बुरों के साथ, ओ ! उर्फी, कि जब तुम्हें मौत आए, मुसलमान तुम्हारे शव को पाक पानी से नहलाये और हिन्दू उसका अग्नि संस्कार करें।''
यह कबीर का ही युग बोध है कि वे बीच बाजार में हाथ में जलता हुआ मुराडा लिये खडे हैं और सत्य की खोज में समाज के अग्रदूत बने हैं –

हम घर जारा आपना, लिए मुराडा हाथि ।
अब घर जालौ तास का, जो चलै हमारे साथी ।।

भारतीय परम्परा में वे आज जुझारू प्रेरणा के प्रतीक हैं एवं मानवता तथा भारतीयता के सच्चे पोषक हैं।[11]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 2, February 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0902010 |

निष्कर्ष

भारतीय वर्णव्यवस्था ,जाति-पाँति, भेदभाव,उंच-नीच भाव और छुआछूत ,सामाजिक ,धार्मिक पाखंडी वृत्ति , पुनर्जन्म, अवतारवाद ,कर्मफल आदि के आधार पर कबीर के सामाजिक एवं दृष्टिकोण या मान्यताओं को हम स्पष्ट कर सकते हैं । कबीर के सामाजिक एवं दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को वर्तमान मूल्य और जीवनादर्शों को ध्यान में रखकर देखना आवश्यक है ।आज के संघर्षों को देखकर यह निश्चित करना अनिवार्य है । इस बात के लिए यही तत्त्व,भाव ,विचार प्रासंगिक हैं जो हमारे वर्तमान जीवन के आदर्शों तथा मूल्यों की प्रगति में सहायक हों । सोचना जरूरी है कि कबीर कौन -सी सामाजिक वास्तविकताओं से जुड़े हुये थे ? किन वास्तविकताओं से उनका काव्य निर्माण हुआ था ? कौन -से सामाजिक -धार्मिक दृष्टिकोण उनमें प्रकट हुये हैं ?कबीर का मानवीय दृष्टिकोण कौनसा था ? सामाजिक विकास में किसने गति दी है ? कैसे बाधाएँ निर्माण हुईं ? अनेक प्रश्नों के यदि उत्तर सोचें कबीर हमारे बहुत नजदीक तथा अधिक आधुनिक लगते हैं।उन्होंने वर्णव्यवस्था का विरोध किया था ।जाति-पाँति ,उंच -नीच ,छुआछूत की भावना का निषेध किया ।मानव जाति में समानता की इच्छा रखी।ये बातें प्रासंगिक हैं। कबीर ने शोषित ,पीड़ित जनता की मुक्ति के लिए संघर्ष किया । वे स्वयं उसमें सक्रिय रहे ।उन्होंने खुद को जनता के साथ ,जनता के हित के साथ रखा था । कबीर अपने युग के वर्ग संघर्ष से गहराई से जुड़े रहे । युगीन अगतिशील स्थितियों से विद्रोह करते रहे ।उन्होंने शोषण करनेवाली परंपरागत मान्यताओं में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया ।इसलिए कबीर प्रगतिशील ठहरते हैं तथा आज भी उनका चिंतन प्रासंगिक है ।[12]

संदर्भ

1. रमेशचन्द्र शाह: *छायावाद की प्रासंगिकता*, वाग्देवी पॉकेट बुक्स प्रकाशन, बीकानेर,2003संस्करण, पृ. 156-157
2. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ रमेशचन्द्र मिश्र:*कबीर वचनामृत*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2005, पृ. 153
3. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं*, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण,2003, पृ. 31
4. रवीद्र कुमार सिंह:*संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 16
5. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं*, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण, 2003,पृ. 35
6. रवीद्र कुमार सिंह :*संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 86
7. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं*, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण,2003, पृ. 12
8. रवीद्र कुमार सिंह :*संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 88
9. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं*, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण,2003, पृ. 38
10. वही,पृ. 26
11. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ रमेशचन्द्र मिश्र:*कबीर वचनामृत*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2005, पृ. 152
12. जीवन सिंह ठाकुर : 'मानवीय चेतना की मुख्यधारा और कबीर',*कबीरदास विविध आयाम*(प्रभाकर श्रोत्रिय),भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, प्रथम संस्करण 2002, पृ॰ 97.

Impact Factor: 7.580

INTERNATIONAL JOURNAL
OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH
IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com